उपसंहार

उपसंहार

प्राचीन काल में शास्त्रीय रंगमंच राज्याश्रित था और लोक–रंगमंच जनाश्रित। मध्यकाल में मुसलमान मुगल शासकों ने कलाओं के लगभग सभी रूपों का खूब विस्तार किया व आधुनिक समय में रंगमंच राष्ट्र की पहचान भी रहा है, आदि के महत्व को बताते हुये स्वतंत्रता पूर्व रंगमंच का स्थान व स्वतंत्रता पश्चात् रंगमंच के स्थान को बताने का प्रयास किया गया है। उसके बाद भरत मुनि ने नाटक की उत्पत्ति को दैवी माना, औपनिवेशिक काल में आज के आधुनिक रंगमंच और फिल्मों की जगह आल्हा, कव्वाली मुख्य थे। लेकिन पारसी थियेटर आने के बाद दर्शकों में रंगमंच के प्रति लोकप्रियता बढ़ती चली गयी। बाद में 1930 के दशक में आवाज रिकॉड करने की सुविधा शुरू हुई और फिल्मों में भी इस विरासत को नये तरह से अपना लिया गया और हमारा नाटक व्यावसायिक पारसी रंगमंच के रूप में विकसित हुआ। 80 वर्ष तक पारसी रंगमंच ने मनोरंजन के क्षेत्र में अपना सिक्का जमाए रखा। आज हमारे देश में रंगमंच प्रायः अव्यावसायिक रूप में क्रियाशील है, इसीलिए उसके विकास की गति बहुत मन्द हो गयी है।

नाटक की सही अभिव्यक्ति रंगमंच के माध्यम से ही होती है। यह ऐसी अभिव्यक्ति है, जो एकदम तात्कालिक और जीवन्त होती है, जिसका रसास्वादन हम रंगमंच पर करते हैं। भारतीय नाटकों और नाटककारों की अपनी विशिष्ट परम्परा है। वस्तुतः हमारे प्राचीन नाटक भी हमारी सनातन संस्कृति की देन है।

परिवर्तन और विकास संसार का एक सार्वभौमिक सत्य है उसी प्रकार रंगमंच मनुष्य की सनातन प्रवृत्ति है और उसका उद्भव एवं विकास भी इसका एक सार्वभौमिक सत्य है। प्रत्येक नाटक मूल रूप में रंगमंच से जुड़ा हुआ होता है। भारतीय रंगमंच के इतिहास में संगीत का एक अपना प्रमुख स्थान रहा है जिसमें अनेक शताब्दियों का नाटक एवं रंगमंच में संगीत की एक सूत्रता की निरंतरता का वर्णन किया गया है। इसका अध्ययन निम्नलिखित चार सोपानों में क्रम बद्ध रूप से किया गया है, लोक रंगमंच, संस्कृत रंगमंच, पारसी रंगमंच व हिन्दी रंगमंच। संगीत में लोक रंग–परम्परा अत्यंत प्राचीन है और संगीत ही लोक–रंग परम्परा के उद्गम का आधार स्तम्भ रहा है तथा प्रकृति की इसी विशाल गोद में संगीत, गीत, संवाद, नृत्य, कथा, अभिनय, दृश्य आदि का सृजन होता रहा है। लोक रंगमंच की परम्परा रासलीला, रामलीला, नौटंकी, स्वांग, जात्रा, कठपुतली आदि नाट्याभिनय के रूप में विद्यमान थी। संस्कृत रंगमंच में लोकधर्मी व नाट्यधर्मी दो धार्मिकताएं मानी है। धार्मिक उत्सवों, वेद–पूजा, कर्मकाण्ड़ों, वैदिक संवादों और

सूक्तियों में संस्कृत रंगमंच की उत्पत्ति मानी जाती है। पारसी रंगमंच काल सन् 1874 से 1940 तक माना गया है और यही काल हिन्दी रंगमंच का विकास युग माना गया है। पारसी रंगमंचकालीन संगीत की कुछ सीमाएँ थी वर्तमान कालीन संगीत तब नहीं था। तब न रेड़ियो था, न संगीत सम्मेलन और न विद्यालय–विश्वविद्यालय, न अकादमी। तब तो संगीत सिर्फ मंदिरों, मजारों, कोठों, रियासतों और ग्रामीण इलाके में ही था। जो परम्परागत धुनों पर ही गाया–बजाया जाता था परंतु संगीत प्रत्येक उत्सव में था। हिन्दी रंग–परम्परा का विकास क्रमिक रूप से उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ। जिसको तीन भागों में बाँटा गया– भारतेन्दु युग, प्रसाद युग और प्रसादोत्तर युग। इसी तरह से आधुनिक युग में नाट्य प्रस्तुति करण को चार भांगों में बाँटा गया है– रंगमंचीय नाटक, रेडियो नाटक, टेलीविजन नाटक और नुक्कड नाटक। पहले लोग रंगमंचीय नाटक ज्यादा पसंद करते थे और ज्यादातर नाटक संगीत युक्त ही होते थे क्योंकि संगीत के बिना नाटक अधूरा है। आज के इस दौर में चूंकि टेलीविजन और फिल्मों के दौर में जबकि लोगों के पास इतनी टेक्नोलॉजी होने के कारण और समय की कमी के कारण रिकॉडिड संगीत सुनना ज्यादा पसंद करने लगे हैं बनिस्पद लाइव के। नुक्कड़ नाटक आज भी प्रचलन में है आज भी गाँवों के गली, मुहल्लों में लोग नुक्कड़ नाटक खेलते है और पसंद करते है।

आज हमारे भारतीय रंगमंच में संगीत का अत्यंत व्यापक प्रभाव दृष्टिगोचर हो रहा है। संगीत के प्रति रूचि रखना मानव मात्र की स्वभाविकता है, और इसी मानव स्वभाव के आधार पर नाट्य की रचना भी की जाती है। इसीलिये लोग अपना–अपना काम करते हुये भी नाटक में अपने शिल्प, श्रृंगार, व्यवसाय, क्रिया और वाणी सब कुछ पा लेते है। यद्यपि मनोरंजन और आनन्द नाटक का प्रधान और प्रत्यक्ष उद्देश्य है, इस आनंद की प्राप्ति मनुष्य को रंगमंच में संगीत से प्राप्त होती है। नाटकों में संगीत का प्रयोग प्रारंभ से ही होता आया है।

संगीत (जिसमें गायन, वादन एवं नृत्य तीनों कलाओं का समावेश है) नाटक में दर्शकों पर एक अद्‌भुद प्रभाव छोड़ता है। संगीत और चित्रकला के समान ही रंगमंच राष्ट्रीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग है। नाटक में मुख्य रूप से कुछ चीजों का होना बहुत ही आवश्यक है जैसे नाटक की कहानी, नाटक के पात्र और चरित्र चित्रण, नाटक की समय सीमा, नाटक में भाव, भाषा और संवाद, नाटक में अभिनेता की वेशभूषा, संगीत, साज़ सामान, ध्वनि, प्रकाश और सही स्थान का चुनाव आदि चीजें होना जरूरी है और ये सभी चीजें नाटक में उपलब्ध हो तभी दर्शक नाटक को पसंद करता है। कम्प्यूटर के इस युग ने तो सभी चीजें और भी आसान कर दी हैं। कम्प्यूटर के

माध्यम से नाटक में Animation and Effect जैसे– प्रकाश संयोजन, वाद्यों की धुन, अलग–अलग तरह की आवाजें आदि डाल सकते हैं।

रंगमंच पर प्रस्तुत नाटक एक सामूहिक कला है और नाटक में संगीत का होना बहुत जरूरी है। संगीत का आधार स्वर है। स्वर (नाद) तथा लय के पहियों पर संगीत रूपी रथ गतिमान होता है। स्वर के बिना संगीत का अस्तित्व नहीं है जबकि ताल के बिना लय हीन गायन तथा वादन किया जा सकता है अतः स्वर संगीत की आत्मा है। संगीत का उद्‌गम, स्वर के उद्‌गम से ही आरम्भ होता है। नाटकों में जिस तरह गीत, राग और रस का महत्वपूर्ण स्थान है उसी तरह वाद्यों यत्रों का और उसकी संगत का भी उतना ही महत्व है। भारतीय रंगमंच में संगति एक ऐसा विषय है जिसके लिए कहा जा सकता है–हरि अनंत हरि कथा अनंता। इसके अलावा रंगमंच में नृत्य का भी उल्लेख है। नृत्य का भी उतना ही महत्व है जितना गायन व वादन का। मालविकाग्निमित्रम् में नायिका मालविका को नाट्य की शिक्षा दी जाने का प्रसंग आया है। उसके शिक्षक उसे 'अभिनय' सिखाते हैं। इसलिए उनका उल्लेख 'नाट्याचार्य' और 'अभिनयाचार्य' के रूप में हुआ है। आचार्य भरत मुनि ने भी नाट्यशास्त्र में स्पष्ट किया है कि योग, कर्म, सारे शास्त्र संपूर्ण शिल्प तथा विविध कार्यों में ऐसा कोई कार्य नहीं, जो नाटक में न पाया जाता हो। उनके अनुसार नाटक–पाठ्य (संवाद) गीत, अभिनय (क्रियाकलाप) और रस की अभिव्यंजना है।

लोगों का संस्कृति आदि भेदों के बाजूद भारतीय रंगमंच में संगीत को अपनाना और प्रस्तुत करना एवं भारतीयता को जीना भारतीय रंगमंच में संगीत के अंतर्राष्ट्रीय वर्चस्व का परिचायक है। भारतीय रंगमंच में संगीज अनेक देशों में अपना भाव और प्रभाव दिखाता हुआ अपनी शाश्वत् व दिव्य अवस्था का दिग्दर्शन कराता है। भारतीय रंगमंच के अनेक नाट्यकारों एवं संगीतकारों जिसमें ब.व. कारंत, मोहन उप्रेती, हबीव तरवीर, लोकेन्द्र त्रिवेदी, रत्ना पणिक्कर, भीष्म साहनी, एम. के. रैना आदि अनेक नाट्यकारों का योगदान है जिनके नाटक विश्वविख्यात हैं। इनके नाटकों से आज की युवा पीढ़ी प्रेरणा ले रही है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय रंगमंच में प्रभावात्मकता, व्यापकता एवं प्रसार की दृष्टि से संगीत का प्रयोग हमेशा से ही होता आ रहा है और हमेशा से ही रंगमंच दर्शकों के मनोरंजन का साधन रहा है। उसका सम्बन्ध सम्पूर्ण भारतीय से प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से रहा है। भारतीय रंगमंच में संगीत के द्वारा भावों की अभिव्यक्ति का सरल माध्यम व साधन है। अतः भारतीय रंगमंच में संगीत का विविधात्मक प्रयोग हमेशा से ही होता रहा है और आगे भी होता रहेगा।